अङ्क-२५
जनवरी-जून २०१५

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

गायत्रोपनिषद् तलवकारोपनिषद्-ब्राह्मण में सवितृ-तत्त्व

डॉ. मोक्षराज

सहस्रवर्त्मा सामवेदः

ऋग्वेद की २१, अथर्ववेद की ९, यजुर्वेद की १०१ तथा सामवेद की १००० शाखायें हैं। सभी मिलाकर ११३१ शाखायें एक स्वर में स्वीकृत हैं। यदि १००० शाखाओं को केवल गानप्रकार-वैविध्य एवम् अनेकता से सहस्ररूप में अलङ्कृत किया जाता है तो फिर वेद की शाखाएँ ४ मूल संहिताओं को छोड़कर ११२७ ही हैं; यह कहना मिथ्या हो जायेगा। अर्थात् सामवेद की शाखायें वास्तव में एक हजार ही रही हैं। सामगान की विविधता से इस पक्ष में कोई दोष नहीं आता बल्कि पुष्टि होती है कि किस प्रकार १००० रही होंगी।

सहस्र शाखाओं में सहस्रों गान का होना इसलिये आश्चर्यजनक नहीं है; क्योंकि -

१. एक सामयोनि ऋक् पर अनेक गान सम्भव होते हैं।

२. अनेक ऋचाओं पर एक ही गान पृथक्-पृथक् होते हैं।

३. त्रिवृत, पञ्चदश स्तोम आदि में सङ्ख्यायें बढ़ती ही हैं।

४. अनेक गान सामयोनि ऋक् पर आधारित न होकर केवल स्तोभों पर ही आधारित होती हैं जिन्हें 'छन्नसाम' कहा जाता है।

५. एक उदाहरण जैसे कि गायत्रपर्व में गायत्री ऋक् पर केवल एक गायत्रसाम मिलता है। जबकि आग्नेयपर्व में ११४ सामयोनि ऋचाओं पर १८० साम हैं, ऐन्द्रपर्व में ३५२ ऋचाओं पर ३८५ साम हैं। अतः ५८५ सामयोनि ऋचाओं पर ११९८ साम हैं। यही कारण है कि दशराजपर्व, संवत्सर, एकाह, अहीन, सम, प्रायश्चित्त एवं क्षुद्रपर्व के रूप में विभाजित ऊहगानों तथा ऊह्यगानों की सङ्ख्या भी सहस्रों हैं। यह तो सहस्रवर्त्मा सामवेद के विषय में मेरा स्पष्ट मत प्रकट हुआ।

अब गायत्र-उपनिषद् के स्रोत खोजते हैं। यद्यपि वैदिक उपनिषद् प्रमुखतया ११ हैं, तथापि मद्रास, पुस्तकालय में २०० से अधिक हैं। तो क्या यह नया उपनिषद् गायत्र नाम से है ? नहीं, कारण अग्रलिखित हैं -

जैमिनीय(सामवेदीय)ब्राह्मण सञ्ज्ञा सन्दर्भ

सामवेद की तलवकार ऋषि के नाम से तलवकारशाखा प्रसिद्ध थी। उसीका नाम जैमिनीय-शाखा हो गया, इसका कारण क्या रहा होगा ? ज्ञात नहीं । कालान्तर में तलवकारब्राह्मण का नाम जैमिनीयब्राह्मण हो गया।[१]

[१] भूमिका - जैमिनीयोपनिषद्-ब्राह्मण - पं. भगवद्दत्त

गायत्र उपनिषद् -

जैमिनीयब्राह्मण(तलवकारब्राह्मण) के अन्तिम भाग में जैमिनीयोपनिषद्-ब्राह्मण (तलवकारोपनिषद्-ब्राह्मण) है। यह ०४ अध्याय का एक भाग है। इसीका नाम गायत्र-उपनिषद् भी है।[२] इस उपनिषद् में गायत्र, गायत्री, सविता-सावित्री का विशेष उल्लेख है।

केनोपनिषद् का मूल भी यही ब्राह्मण-उपनिषद है -

गायत्र उपनिषद के अन्तर्गत चतुर्थ अध्याय में दशम अनुवाक के चारों खण्ड की विषयसामग्री केनोपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है। अध्याय - ४ की कण्डिका सङ्ख्या - १८ से २१ केनोपनिषद् है। मुद्रण दोष है या ऋषिओं द्वारा किया गया पाठभेद किन्तु कुछ अन्तर दिखाई दे रहे हैं। (१) इह चेदवेदी ..... विविच्य (गायत्र उपनिषद् में) /विचिन्त्य (सम्प्रति प्राप्त केनोपनिषद् में)।[३] (२) न तत्र चक्षुर्गच्छति ..... न विद्म (मूल गा. उप. में) / न विदु (सम्प्रति केनोपनिषद् में)।[४]

वेदभाष्य एवं सत्यार्थप्रकाश में महर्षिदयानन्दसरस्वती द्वारा प्रसिद्ध गायत्रीमन्त्र का प्रमुख अभिप्राय

भूः = कर्मविद्यां,[५] प्राणः यः प्राणयति चराचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः[६]

भुवः = उपासनाविद्यां,[७] भुवरित्यपानः यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः[८]

स्वः = ज्ञानविद्यां,[९] स्वरिति व्यानः यो विविधं जगत् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः[१०]

तत् = इन्द्रियैरग्राह्यं परोक्षम्[११]

सवितुः = (देवानां प्रसविता, प्रसूता सर्वे कामाः समृध्यन्ते, सर्वजगदुत्पादकस्य,[१२] सकलैश्वर्य-प्रदस्येश्वरस्य,[१३] सर्वस्य जगतः प्रसवितुः[१४]

---

[२] सैषा शाट्यायनी गायत्रस्योपनिषदेवमुपासितव्या॥ जैमिनीयोपनिषद् अध्याय ४/१७/२ (अनु. ९, द्वितीय खण्ड २)

[३] जैमिनीयोपनिषद् - अ. ४, अनु. १०. ख. २, मं. ५

[४] वही, ४/१०/१-३

[५] यजुर्वेदभाष्य; महर्षिदयानन्दसरस्वती, ३६/३

[६] सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास, ३

[७] यजु. भा. (महर्षि दया. स.), ३६/३

[८] सत्यार्थप्रकाश, ३

[९] यजु. भा. (म.द.) ३६/३

[१०] सत्यार्थप्रकाश, ३

[११] यजु. भा., ३६/३

[१२] यजु. भा., ३/२

[१३] यजु. भा., ३६/३

वरेण्यम् = अतिश्रेष्ठं,[१५] वर्तुमर्हम् अत्युत्तमं,[१६] स्वीकर्त्तव्यम्[१७]

भर्गो = भृज्जन्ति पापानि दुःखमूलानि तत् भर्गः,[१८] सर्वदोषप्रदाहकं तेजोमयं शुद्धं,[१९] चेतब्रह्मस्वरूपम्[२०]

देवस्य = प्रकाशमयस्य शुद्धस्य सर्वसुखप्रदातुः परमेश्वरस्य,[२१] स्वप्रकाशस्वरूपस्य सर्वैः कमनीयस्य सर्वसुखप्रदस्य,[२२] सुखप्रदातुः,[२३] कमनीयस्य,[२४]

धीमहि = दधीमहि,[२५] धरेम,[२६] ध्यायेम[२७]।

धियो = प्रज्ञा बुद्धीः,[२८] प्रज्ञा,[२९] प्रज्ञाः कर्माणि वा[३०]।

यो नः = सविता देव परमेश्वर, अस्माकम्

प्रचोदयात् = प्रकृष्टार्थे प्रेरयेत्।[३१]

परमात्मानं प्राप्य ऐहिकपारमार्थिके सुखे भुञ्जीमहीत्यस्मै।[३२]

गायत्रोपनिषद् में सविता-सावित्री सम्बन्ध

क्र. सं.	सविता	सावित्री	परस्पर सम्बन्ध
१.	अग्निः	पृथिवी	स यत्राऽग्निस्तत्पृथिवी यत्र वा पृथिवी तदग्निः । द्वे योनी । तदेकम्मिथुनम् ।

[१४] वही, ३/३५
[१५] वही, ३/३५
[१६] वही, २२/९
[१७] वही, ३६/३
[१८] वही, ३/३५
[१९] वही, २२/९
[२०] स.प्रकाश, ३
[२१] यजु. भा., ३/३५
[२२] वही, २२/९
[२३] वही, ३०/२
[२४] वही, ३६/३
[२५] वही, ३/३५
[२६] वही, ३०/२
[२७] वही, ३६/२
[२८] वही, ३/३५
[२९] वही, २२/९
[३०] वही, ३०/२
[३१] वही, ३/३५
[३२] वही, २२/९ भावार्थ

२.	वरुणः	आपः	स यत्र वरुणस्तदापो यत्र वाऽऽपस्तद्वरुणः। ते द्वे योनी। तदेकम्मिथुनम्।
३.	वायुः	आकाशः	स यत्र वायुस्तदाकाशो यत्र वाऽऽकाशस्तद्वायुः। ते द्वे योनी। तदेकम्मिथुनम्।
४.	यज्ञः	छन्दांसि	स यत्र यज्ञस्तच्छन्दांसि यत्र वा छन्दांसि तद्यज्ञः। ते द्वे योनी। तदेकम्मिथुनम्।
५.	स्तनयित्नुः	विद्युत्	स यत्र स्तनयित्नुस्तद्विद्युद्यत्र वा विद्युत् तत्स्तनयित्नुः। ते द्वे योनी। तदेकम्मिथुनम्।
६.	आदित्यः	द्यौः	स यत्राऽऽदित्यस्तद्द्यौर्यत्र वा द्यौस्तदादित्यः। ते द्वे योनी। तदेकम्मिथुनम्।
७.	चन्द्रः	नक्षत्राणि	स यत्र चन्द्रस्तन्नक्षत्राणि यत्र वा नक्षत्राणि तच्चन्द्रः। ते द्वे योनी। तदेकम्मिथुनम्।
८.	मनः	वाक्	स यत्र मनस्तद्वाग्यत्र वा वाक् तन्मनः। ते द्वे योनी। तदेकम्मिथुनम्।
९.	पुरुषः	स्त्री	स यत्र पुरुषस्तत् स्त्री यत्र वा स्त्री तत्पुरुषः। ते द्वे योनी। तदेकम्मिथुनम्।/३३

उक्त तालिका में स्पष्ट है समस्त पृथिवीवासी अग्नि के उपासक हैं। अग्नि के उपयोग के बिना उनका अस्तित्व सम्भव नहीं है। यही कारण है आचार्य यास्क ने पृथिवीस्थानीय देवता - अग्नि को ही माना है।[३३] इसमें ०८ वसु (अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यु, चन्द्रमा, नक्षत्राणि) वरुण, यज्ञः, मन, वाक्, पुरुष, स्त्री, स्तनयित्नु, विद्युत्, आपः, छन्दांसि-ये सभी भौतिकाभौतिक तत्त्व इस सावित्री-सविता योनी में सम्मिलित हैं जो कि एक दूसरे के पूरक तत्त्व हैं। उपास्य-उपासक, आधार-आधेय, जो जिसका पदार्थ है वह सब सविता-सावित्री मिथुन की भाँति संयुक्त हैं।

आपःतत्त्व में व्याप्त जलीय, द्रवीय गुणों में जो वरणीय श्रेष्ठ तत्त्व वरुण है उसकी उपासना की जा रही है। अर्थात् साधक प्रत्येक स्यन्दनीय पदार्थों में श्रेष्ठ वरुण को साथ ही देखे, पृथक् न समझे, एक पल भी उसके मिथुन सम्बन्ध से विरुद्ध न होवे।

जहाँ-जहाँ आकाश है, अवकाश है, उसमें रहने वाले समस्त प्राणी वायु से प्राणवान् हैं, वे जीव उसी प्राणाधार से जीवित हैं । उस सर्वत्र गतिमान-अगतिमान (एजति न एजति) तत्त्व को जाने जो

[३३] निरुक्त, ७/१-२

आकाश जैसे सूक्ष्मतम, व्याप्त तत्त्व में उस वायुरूप परमेश्वर का निरन्तर ध्यान करते हैं। उस आकाश-वायु मिथुन को पृथक् नहीं देखते उसमें अपनी प्रज्ञा स्थापित करते हैं।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः ..... छन्दांसि जज्ञिरे .....।[३४]

अथर्ववेदादि मन्त्रसंहिताओं का प्रकाश उस यज्ञस्वरूप प्रजापति से ही हुआ है तथा बिना मन्त्र के यज्ञ तामसिक कोटि का अर्थात् यज्ञीय उद्देश्य के विरुद्ध माना जाता है।[३५] अर्थात् उस स्रष्टा ब्रह्म तत्त्व में वेद नित्य ही मिथुनवत् स्थिर रहते हैं। इस रहस्य को जानने वाला ही सविता-सावित्री को समझता है।

व्याप्त विद्युत् तत्त्व स्तनयित्नु से प्रकाशित होता है। कण-कण में समाये हुए आवेश वर्षा में चमकती बिजली के रूप में अपनी शक्ति का दर्शन कराती है। यह प्रकट व अप्रकट स्तनयित्नु व विद्युत् एकमिथुन है।

'द्यु' आदित्य से प्रकाशित है उसके प्रकाशक होने की उपासना उसकी सर्वतोदृष्ट ऊर्जा-प्रकाश किरणें व दीप्तमान् तत्त्व निरन्तर करते हैं। ये परस्पर एक मिथुनवत् संयुक्त हैं। यही सविता-सावित्री सम्बन्ध है।

रात्रि का देवता अग्नि है किन्तु वह चन्द्रमा न होने पर दीप्ति का आधार है। चन्द्रमा समस्त नक्षत्रों में अपनी शीतल द्युति से शोभायमान होता है। नक्षत्रों की ज्योत्स्ना के साथ उसका गहरा मिथुन सम्बन्ध है। यह नाक्षत्रिक चन्द्र का सावित्री-सविता तत्त्व प्रकृति की गहराई में, स्रजक साध्य (ईश्वर) की सामर्थ्य का प्रकाश करते हैं। मन के अन्दर सङ्कल्प-विकल्प की भी एक भाषा होती है, मन में वाणी समायी हुई है। वाक् बिना मन के अकल्पनीय है ऐसा अन्तःकरण के सूक्ष्म तत्त्वों का एकीभाव साधक को अन्तर्मुखी करता हुआ सविता-सावित्री का वरणकर्त्ता बना देता है।

प्र (चोदयात्) स्त्री व पुरुष के साथ परम्परा से जुड़ा स्वाभाविक धर्म है। स्त्री के आधार को प्रेरित करना प्रजनन का कारण है, यह मिथुन व द्वे योनी एक दूसरे के समान या पूरक हो जाते हैं। इन सविता व सावित्री के आधार-आधेय सम्बन्ध से सुप्रसिद्ध महाव्याहृति वाला गायत्री-मन्त्र परिभाषित होता है। सविता-सावित्री का यह सम्बन्ध और अधिक विस्तार से गोपथब्राह्मण[३६] में भी उल्लिखित है।

सविता शब्द की व्युत्पत्ति व स्वरूप महर्षिदयानन्दकृतभाष्य में स्पष्ट ही है। सावित्री देवता का स्वरूप सविता की उपासिका के सम्बन्ध में है। सवित् + अण्। सवितुः प्रेरकस्योपासिका।

अतः **जैमिनीयोपनिषद्-ब्राह्मण** में भूः, भुवः, स्वः तथा वरेण्यं, भर्गः, प्रचोदयात् के साथ सावित्री एवं सवितापदेन व्यवहृत तत्त्वों की सङ्गति निम्न प्रकार है।

भूः अग्निः (सविता) वरेण्यम्। भूः आपः (सावित्री) वरेण्यम्।भूः चन्द्रमा (सविता) वरेण्यम्।

---

[३४] ऋग्वेद, १०/९०/९, यजुर्वेद, ३१/७

[३५] मन्त्रहीनं विधिहीनं .... श्रीमद्भगवद्गीता

[३६] गोपथब्राह्मण, मौद्गल्य आख्यान, पूर्वभाग, प्रपाठक १, कण्डिका ३३

अर्थात् - भूः तत् सवितुः (अग्नेः, आपः, चन्द्रस्य) वरेण्यम्।[३७]

भुवः अग्निः (भर्गः) देवस्य धीमहि।

भुवः आदित्यः (भर्गः) देवस्य धीमहि।

भुवः चन्द्रमा (भर्गः) देवस्य धीमहि।

अर्थात् भुवः भर्गः अग्निः (सविता) आदित्यः (सविता) चन्द्रमा (सविता) देवस्य धीमहि।[३८]

धियो यो नः (प्रचोदयात्)

यज्ञो वै प्रचोदयति। यज्ञः (सविता) प्र-चोद् [(छन्दांसि (सावित्री)] प्रज्ञां यज्ञः प्रचोदयति। प्रज्ञां यज्ञः वेदानुसारं प्रेरयति। स्त्री च वै पुरुषश्च प्रजनयतः। (प्र-चोदयतः)।

अर्थात् - स्वः यज्ञः धियो यो नः प्रचोदयति।

स्वः यज्ञबुद्धिः स्त्री पुरुषश्च प्रजनयतः, प्रचोदयतः वा।[३९]

॥ गायत्रं ॥ (परमेष्ठी प्रजापतिः, गायत्री, सविता।)

ओऽ३म्। तत्सवितुर्वरेणियोम्। भार्गोदेवस्य धीमाहीऽ२।

धियो यो नः प्रचो१२१२। हुम् आ२। दायो। आ२३४५॥[४०]

[स्वराः ६। पर्वाणि ६। विकाराः ३ ॥ (खि)]

तत्सवितुर्वरेणियोम्॥ भार्गोदेवस्यधीमाही २। धियोयोनः प्रचो १२१३ ॥

हुम्०स्थिआ२। दायो॥ आ३४५ ॥[४१] [स्व. ६/प. ६/वि. २) ६ (का १६)]

जो गायत्रीमन्त्रोक्त सावित्री को इस प्रकार जानता है, वह लोक पर विजय प्राप्त करता है तथा मृत्यु से पार तर जाता है।[४२] अर्थात् सविता-सावित्री के स्वरूप का साक्षात्कार करने वाला इहलोक व परलोक का विजयी, मोक्ष का आनन्द प्राप्त करता है।

डॉ. मोक्षराज
पूर्व सदस्य
राजस्थान संस्कृत आकादमी, जयपुर

---

[३७] जैमिनीयोपनिषद् (४/२८/१), अनु. १२, खं. २, मं. १

[३८] वही १२/२/२

[३९] वही १२/२/३ एवं ५

[४०] प्रकृतिसप्तगानान्तर्भूतं गायत्राख्यं प्रथमं गानम्।

[४१] आरण्यगानम् परिशिष्टं ६

[४२] "..... एतां सावित्रीमेवं वेदाऽप पुनर्मृत्युं तरति सावित्र्या एव सलोकतां जयति।"
- जैमिनीयोपनिषद्-ब्राह्मण ४/१२/२/९